डा० जगदीशचन्द्र जैन
एम० ए०, पी-एच० डी०

महावीर और उनके सिद्धान्त

कल्पना कीजिये आज से अढाई हजार वर्ष पहले के जीवन—की उस समय की—आर्थिक,सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों की. आजकी अपेक्षा उस समय की आर्थिक परिस्थितियाँ सीमित थीं, जिनका प्रभाव तत्कालीन समाज-व्यवस्था पर पड़ना अवश्यंभावी था. यातायात, बनिज—व्यापार के साधन बहुत अल्प थे जिससे दूर के लोगों के साथ संपर्क रखना कठिन था. देवी देवताओं सम्बन्धी अनेक मान्यतायें प्रचलित थीं. खेती-बारी और बनिज-व्यापार में समृद्धि प्राप्त करने और परलोक में शान्ति प्राप्त करने के लिये लोग यज्ञ-यागों में पशु-हिंसा को धर्म मानते थे. मनुष्यों के वर्ण अर्थात् रंगभेद पर आधारित और कार्य-विभाजन के लिये उपयोगी वेदकालीन वर्ण-व्यवस्था, बदलती हुई आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के कारण अहितकर सिद्ध हो रही थी. मनुष्य-मनुष्य में अन्तर बढ़ रहा था. ज्ञातृपुत्र महावीर ने ऐसे ही समय में वैशाली नगरी के कुंडग्राम में जन्म लेकर बिहार की भूमि को पवित्र किया था. वैशाली में लिच्छिवी गण का राज्य था जहाँ कि राजसत्ता नागरिकों द्वारा चुने हुए अनेक गणराजाओं के अधिकार में थी. वर्धमान के पिता सिद्धार्थ वैशाली के ऐसे ही गणमान्य राजाओं में से थे. उनकी माँ त्रिशला लिच्छिवी घराने की थी. 'पूत के पांव पालने में ही दीख जाते हैं' इस कहावत के अनुसार वर्धमान शुरू से ही कुशाग्र बुद्धि थे. कोई चीज जानने और समझने में उन्हें देर न लगती थी. वे अपने माता-पिता और गुरुजनों के आज्ञाकारी और संयमी प्रकृति के थे. दूसरे को दुखी देख उनका हृदय पिघल जाता और दुखियों का दुख दूर करने के लिये वे सदा प्रयत्नशील रहते. वर्धमान बड़े वीर और साहसी थे. उनके वीरतापूर्ण कृत्यों से मुग्ध होकर ही लोग उन्हें महावीर कहने लगे थे.

महावीर का मन संसार में नहीं लगता था. संसार के अन्याय और अत्याचारों को देख उनका कोमल हृदय रो उठता. जितना ही वे विचार करते उतना ही उन्हें यह संसार दुखमय प्रतीत होता. कहीं वे धन-सम्पत्ति की लालसा से युद्ध में संलग्न गणराजाओं को देखते, कहीं उन्हें राजकर और राजदण्ड से पीड़ित लोग दिखाई देते और कहीं ऋण-भार, अकाल और दुर्भिक्ष से ग्रस्त यंत्र की नाईं चलते-फिरते मानव नजर आते. कहीं पशु से भी बदतर जीवन व्यतीत करने वाले दास थे, कहीं समाज से बहिष्कृत नीच समझे जाने वाले शूद्र, और कहीं मनुष्योचित अधिकारों से वंचित अपना सर्वस्व समर्पण कर देने वाली नारियाँ. धर्म के नाम पर आडम्बर और शुष्क क्रियाकाण्ड फैला हुआ था तथा जाति-मद से उन्मत्त बने उच्चवर्ण के लोग अपने ही धर्म-कर्म को सर्वोत्कृष्ट प्रतिपादन करते थे.

यह सब देखकर महावीर के भावुक हृदय में उथल-पुथल मच गई. एकांत में घण्टों बैठ वे बड़ी गंभीरता से जीवन की समस्याओं पर विचार करते, लेकिन कोई रास्ता उन्हें न सूझता. अनेक बार उन्होंने गृहत्याग कर दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया लेकिन घरवालों की अनुज्ञा न मिलने से विचार स्थगित कर देना पड़ा.

महावीर अब तीस वर्ष के हो गये थे. उन्होंने सोचा-ऐसे तो सारी उम्र बीत जायेगी. आखिर उन्होंने लोककल्याण करने का निश्चय कर लिया. उन्होंने एक से एक सुन्दर, नाक के श्वास से उड़ जाने वाले कोमल वस्त्रों और बहुमूल्य आभूषणों को त्याग दिया, सोना-चांदी और मणि-मुक्ताओं को छोड़ दिया, स्वादिष्ट भोजन-पान को तिलांजलि दे दी, अपने मित्रों को त्याग दिया, भाई-बन्धुओं को छोड़ दिया और स्वजन-सम्बन्धियों की अनुमति पूर्वक, पालकी में सवार हो, ज्ञातृखंड नामक उद्यान में पहुँच, श्रमण-दीक्षा स्वीकार की.

महावीर ने बारह वर्ष से अधिक समय तक घोर तप किया. वे शून्यगृहों, उद्यानों, श्मशानों अथवा वृक्षों के नीचे एकासन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से खड़े रहते. कोई उन्हें कठोर वचन कहता तो मौन भाव से सहन करते. भोजन-पान में उन्हें आसक्ति नहीं रह गई थी, अपने लिये तैयार न किया हुआ, रूखा-सूखा भोजन खाकर ही वे काम चला लेते थे. कई दिन तक वे उपवासे रहते. बीमार पड़ने पर चिकित्सा न कराते. कभी कोई ऐसा काम न करते जिससे किसी को कष्ट पहुँचे. महावीर की तपश्चर्या और कष्टसहिष्णुता महान् थी जिसे देखकर बड़े-बड़े साधु-मुनियों के आसन डोल जाते थे.

अपने दीर्घकालीन तपस्वी जीवन में महावीर ने दूर-दूर तक यात्रा की. बिहार में घूमें, पूर्वीय उत्तरप्रदेश के बनारस, साकेत, श्रावस्ती और कौशांबी आदि नगरों कों उन्होंने अपने पाद-विहारों से पवित्र किया. लेकिन सबसे अधिक कष्ट उन्हें पश्चिमी बंगाल के लाढ देश में सहन करना पड़ा. इस देश में अनार्य जातियां बसती थीं और वे श्रमणों के आचार-विचार को हेय समझती थीं. लेकिन महावीर यातनाओं से जरा भी न घबराये और अपने उद्देश्य पर अटल रहे· परिश्रम का फल मीठा होता है. आखिर एक दिन जंभियग्राम में बालुका नदी के किनारे ध्यान-मुद्रा में अवस्थित महावीर ने बोध प्राप्त किया—उनके ज्ञान-चक्षु खुल गये.

केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद महावीर की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई. जन-समूह उनके दर्शन के लिये उमड़ पड़ा. कोई उनका उपदेश सुनने, कोई कुशल-वार्ता पूछने, कोई शंकानिवारण करने और कोई कौतूहल वृत्ति शांत करने के लिए आया. वैदिक दर्शन के प्रकाण्ड पंडित अर्थ-निर्णय के लिये उनके समीप उपस्थित हुए. महावीर की विद्वत्ता और सर्वतोमुखी प्रतिभा से चकित होकर उन्होंने उनका शिष्यत्व स्वीकार किया. आगे चलकर ये ही शिष्य गणधर पद से विभूषित किये गये.

गण और संघ के आदर्श पर महावीर ने अपने अनुयायियों को चार संघों में विभाजित किया था—साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका. संघ के संगठन को दृढ़ बनाने के लिये चारों के चार नेता चुने गये जिससे संघ सुसंगठित रूप से आगे बढ़ता रहा.

निर्ग्रन्थ श्रमण, मठों या उपाश्रयों में रहते और सैकडों की संख्या में एक साथ विहार करते. वर्षा ऋतु में चार महीने वे एक स्थान पर ठहरते, बाकी आठ महीने जन-पद विहार करते. विहार करते समय उन्हें देश-देश की भाषाओं का ज्ञान लोकरिवाजों का ज्ञान तथा जन साधारण के मनोविज्ञान का परिचय आवश्यक था.

महावीर ने अहिंसा पर सबसे अधिक जोर दिया. इस समय खेती-बारी में उन्नति हो जाने से पशु-हिंसा के स्थान पर अहिंसा की उपयोगिता स्वीकार की जाने लगी थी. महावीर का कथन था कि सब जीव सुख-शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं, इसलिए हमें किसी भी प्राणी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए. अपने विकारों पर विजय प्राप्त करने, इन्द्रियों का दमन करने और अपनी प्रवृत्तियों को संकुचित करने को ही वे वास्तविक अहिंसा मानते थे. इसलिए उन्होंने अपने भिक्षुओं को बोलने-चालने, उठने-बैठने, सोने और खाने पीने में सतत जागरूक रहने का उपदेश दिया है.

महावीर की मान्यता थी कि यदि सोने-चांदी के असंख्य पर्वत भी खड़े हो जायें तो भी मनुष्य की तृष्णा शान्त नहीं होती इसलिए मनुष्य को अपना परिग्रह कम करना चाहिए. उनके अनुसार सच्चा त्यागी वही हो सकता है जो सुन्दर और प्रिय भोगों को पाकर भी उनकी ओर से पीठ फेर लेता है, उन्हें धता बता देता है.

महावीर ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानते. उनके अनुसार आत्म-विकास की सर्वोच्च अवस्था ही ईश्वरावस्था है. महावीर जाति-पांति और छुआछूत के सख्त विरोधी थे. मनुष्य मात्र की समानता पर वे जोर देते थे. उन्होंने बार-बार अपने शिष्यों को संबोधन करके कहा था—हे शिष्यो ! सच्चा जैन अथवा सच्चा ब्राह्मण वही है जिसने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त की है, जो पांचों इन्द्रियों पर निग्रह रखता है, जो मिथ्या भाषण नहीं करता और जो सब प्राणियों के हित में रत रहता है. वास्तव में कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होता है. जन्म से नहीं. महावीर के निर्ग्रन्थ धर्म को कोई भी पाल सकता था और उन्होंने स्वयं म्लेच्छ, चोर, डाकू, मछुए, और वेश्याओं आदि को अपने धर्म में दीक्षित किया था.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञान होने के पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर तीस वर्ष तक उपदेश देते रहे. राजगृह से विहार करते-करते वे चतुर्मास व्यतीत करने के लिये पावापुरी पधारे. कार्तिक अमावस्या को प्रातःकाल यकायक ईसवी सन् पूर्व ५२७ के दिन ७२ वर्ष की अवस्था में उनका उपदेश बन्द हो गया. और अमावस्या की रात्रि के पिछले पहर में उन्होंने निर्वाण पद पाया.

बात की बात में महावीर-निर्वाण की चर्चा सर्वत्र फैल गई. भुवन-प्रदीप संसार से सदा के लिये बुझ गया. उस समय काशी कौशल के मल्ल और लिच्छिवी गणराजा उपस्थित थे. उन्होंने इस पुनीत अवसर पर सर्वत्र दीपक जला कर दीपावली का उत्सव मनाया. किसी ने कहा—संसार की एक दिव्य विभूति उठ गई है, किसी ने कहा—अब दुर्बलों का कोई मित्र नहीं रहा. किसी ने कहा—श्रमण भगवान् आज कूच कर गये हैं तो क्या ! वे हमारे लिये बहुत कुछ छोड़ गये हैं, उनके सदुपदेशों को आगे बढ़ाने का काम हम करेंगे, दुनिया को सत्पथ हम दिखायेंगे.

आज भी अणुशक्ति के इस युग में महावीर के लोकप्रिय सिद्धान्त विश्व को मार्गदर्शन करने और हमें राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने में सहायक होंगे, इसमें सन्देह नहीं. लेकिन यह कार्य उनके धर्म के तत्त्व को ठीक-ठीक समझ कर हृदयंगम करने से हो सकता है. उनके नाम पर चली आई रूढ़ियों को पालने से नहीं.[1]

१. आकशवाणी बम्बई के सौजन्य से.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org